7197

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ४ अंक ४ : अगस्त १९८०

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

PRAKASH TRADING COMPANY

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

THE BIKANER WOOLLEN MILLS

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ४ : अंक ४

अगस्त १९८०

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

जैन विज्ञान १०१

कुमारपाल देव-२ १०७

श्रीपाल ११३

हिन्दी जैन साहित्य ११८

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या १२८

पर्यूषण पर्व में मस्तक पर कल्पसूत्र ले जाते हुए

जैन विज्ञान

[पूर्वानुवृत्ति]

—डा० हरिसत्य भट्टाचार्य

चिन्ता

साधारणतः चिन्ता को तर्क या ऊह कहा जाता है। प्रत्यभिज्ञान से प्राप्त दोनों विषयों में अच्छेद्य सम्बन्ध की खोज करना तर्क का काम है। पाश्चात्य मनोविज्ञान इसे Induction कहता है। युरोपीय पण्डित कहते हैं कि Induction observation या भूयोदर्शन का फल है। जैन नैयायिक भी उपलम्भ और अनुपलम्भ द्वारा तर्क की प्रतिष्ठा मानते हैं। दोनों के कथन का तात्पर्य एक ही है। पाश्चात्य तार्किक Inductive truth को एक Invariable अथवा Unconditional relationship कहते हैं। जैनाचार्यों ने कितनी ही शताब्दी पूर्व यही बात कह दी थी। उनके मतानुसार तर्कलब्ध सम्बन्ध का नाम अविनाभाव अथवा अन्यथानुपपत्ति है।

अभिनिबोध

तर्कलब्ध विषय की सहायता से होने वाले अन्य विषय के ज्ञान को अभिनिबोध कहते हैं। साधारणतः अभिनिबोध को अनुमान माना जाता है। इसी को पाश्चात्य ग्रन्थों में अनुमान Deduction, Retiocination अथवा Syllogism नाम दिया गया है। धुआँ देखकर यह कहना कि 'पर्वतो वह्निमान्' (पर्वत में अग्नि है)—इस प्रकार के बोध का नाम अनुमान है। इसमें पर्वत 'धर्मी', किंवा 'पक्ष'; वह्नि 'साध्य', और धूम 'हेतु', 'लिंग' अथवा 'व्यपदेश' है। पाश्चात्य न्याय ग्रन्थों में Syllogism के अन्तर्गत इन्हीं तीन विषयों की विद्यमानता दिखती है। इनके नाम Minor term, Major term और Middle term हैं। अनुमान व्याप्तिज्ञान पर—अर्थात् अग्नि और धूम में जैसा अविनाभाव सम्बन्ध है उस पर—प्रतिष्ठित है। यह व्याप्ति तत्व पाश्चात्य न्याय के Distribution of the middle term के अन्तर्गत है। जैन दृष्टि से अनुमान के दो भेद हैं—(१) स्वार्थानुमान और (२) परार्थानुमान। जिस अनुमान द्वारा अनुमापक स्वयं किसी तथ्य की खोज करता है उसे स्वार्थानुमान

और जिस वचन-विन्यास द्वारा उक्त अनुमापक अन्य को वह तथ्य समझाता है उसे परार्थानुमान कहते हैं। ग्रीक दार्शनिक Aristotle अनुमान के तीन अवयव बतलाता है—(१) जो-जो धूमवान् हैं वह वह्निमान् है, (२) यह पर्वत धूमवान् है, (३) अतएव यह पर्वत वह्निमान है। बौद्ध अनुमान के तीन अवयव इस प्रकार बतलाते हैं—(१) जो धूमवान् है वह वह्निमान् है, (२) यथा महानस, (३) यह पर्वत धूमवान् है। मीमांसक भी अनुमान के तीन अवयव मानते हैं। इनके मतानुसार अनुमान के ये दो रूप हो सकते हैं। प्रथम रूप—(१) यह पर्वत वह्निमान् है, (२) क्योंकि यह धूमवान् है, (३) जो धूमवान् होता है वह वह्निमान् होता है यथा महानस। द्वितीय रूप—(१) जो धूमवान् है वह वह्निमान् है, (२) यथा महानस, (३) यह पर्वत वह्निमान् है। नैयायिक अनुमान को पञ्चावयव मानते हैं। उनके मतानुसार अनुमान का आकार यह होगा—(१) यह पर्वत वह्निमान् है, (२) क्योंकि यह धूमवान् है, (३) जो धूमवान् होता है वह वह्निमान् होता है यथा महानस, (४) यह पर्वत धूमवान् है, (५) इसलिए यह वह्निमान् है। अनुमान के ये पाँच अवयव क्रमशः प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन के नाम से प्रसिद्ध हैं। जैन दर्शन के नैयायिक कहते हैं कि उदाहरण, उपनय और निगमन निरर्थक हैं। जैन अनुमान के दो अवयव मानते हैं—(१) यह पर्वत वह्निमान् है, (२) क्योंकि यह धूमवान् है। जैन कहते हैं कि कोई भी बुद्धिमान प्राणी इन दो अवयवों से ही अनुमान के विषय को समझ सकता है। अतएव अनुमान के अन्य अवयव बेकार हैं। परन्तु यदि श्रोता अल्पबुद्धि हो तो उसके लिए जैन लोग नैयायिकों के पाँच अवयवों का स्वीकार करते ही हैं, इतना ही नहीं इसके अतिरिक्त प्रतिज्ञा शुद्धि, हेतुशुद्धि जैसे और भी पाँच अवयव बढ़ाकर अनुमान के दस अवयव बनाते हैं।

श्रुतज्ञान

अनुमान तक मतिज्ञान का अर्थात् इन्द्रिय संश्लिष्ट ज्ञान का अधिकार है। श्रुतज्ञान नित्य सत्य के भण्डार रूप हैं, इसी का दूसरा नाम आगम है। जैन ऋग्वेदादि चार वेदों को आगम या प्रमाण रूप नहीं मानते। वे कहते हैं कि जिन्होंने अपनी साधना—तपश्चर्या के बल से लोकोत्तरत्व प्राप्त किया है उन्हीं सिद्ध, सर्वज्ञ, तीर्थंकर भगवान के वचन सर्वोत्कृष्ट आगम हो सकते हैं। कभी-कभी जैन अपने आगम को वेद भी कहते हैं और उन्हें चार भागों में विभक्त करते हैं। जिस प्रकार मतिज्ञान के अवग्रहादि चार भेद अथवा पर्याय हैं उसी प्रकार वे श्रुतज्ञान के भी लब्धि, भावना, उपयोग और नय ये चार भेद

करते हैं। ये चार भेद वस्तुतः व्याख्यान भेद मात्र है। इस व्याख्यान प्रणाली को कुछ अंशों में पाश्चात्य तर्क विद्या विषयक Explanation के समान कह सकते हैं।

लब्धि

किसी भी पदार्थ को, उसके साथ सम्बन्ध रखने वाले किसी भी विषय की सहायता से समझाने का नाम लब्धि है।

भावना

किसी भी विषय को पूर्व अवधारित किसी विषय के स्वरूप, उसकी प्रकृति अथवा क्रिया की सहायता से समझाने के प्रयत्न को भावना कहते हैं। भावना विषय-व्याख्यान की एक अति उन्नत प्रणाली है। यह पदार्थ एवं तत्सम्बन्धी अन्य बहुत सी वस्तुओं पर विचार करके निर्णय करने योग्य पदार्थ का निरूपण करने को आगे बढ़ती है।

उपयोग

भावना प्रयोग द्वारा पदार्थ का रूप निर्देश करने का नाम उपयोग है।

नय

भारतीय दर्शनों में 'नय विचार' जैन दर्शन की एक विशेषता है। पदार्थ की सम्पूर्णता की ओर पूर्ण ध्यान दिए बिना किसी एक विशिष्ट दृष्टिकोण से विषय की प्रकृति का निरूपण करना 'नय' कहलाता है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नाम से नय के दो भेद हैं। द्रव्यार्थिक नय का विषय द्रव्य और पर्यायार्थिक नय का विषय पर्याय है। द्रव्यार्थिक नय नैगम, संग्रह और व्यवहार भेद से तीन प्रकार का होता है। ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ तथा एवंभूत भेद से पर्यायार्थिक नय चार प्रकार का होता है।

नैगम

वस्तु स्वरूप का विचार न करके, किसी एक बाह्य स्वरूप सम्बन्धी विचार करने का नाम नैगम है। कोई व्यक्ति ईंधन, पानी और अन्य सामग्री लिए जाता हो, तब उससे पूछा जाए कि "तुम यह क्या करते हो?" तो वह उत्तर में कहे कि "मुझे रसोई करनी है।" उसका यह उत्तर नैगम नय की दृष्टि से होगा। इसमें ईंधन, पानी तथा अन्य सामग्री के स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया। केवल यही बतलाया गया है कि उसका क्या उद्देश्य है।

संग्रह

वस्तु के विशेष भाव की ओर ध्यान न देकर, वह वस्तु जिस भाव सम्बन्ध से अपनी जाति की अन्य वस्तुओं के साथ सादृश्य या समानता रखती हो उसकी ओर ध्यान देने का नाम संग्रह नय है। संग्रह नय से पाश्चात्य दर्शन के Classification का मिलान कर सकते हैं।

व्यवहार

उपरोक्त संग्रह नय से यह बिल्कुल अलग पड़ता है। सामान्य भाव की उपेक्षा करके विशिष्टता की ओर ध्यान देने का नाम व्यवहार नय है। पाश्चात्य विज्ञान में इसे Specification अथवा Individuation कहा जाता है।

ऋजुसूत्र

वस्तु की परिधि को कुछ अधिक संकुचित करके, उसकी वर्तमान अवस्था द्वारा निरूपण करने का नाम ऋजुसूत्र है।

शब्द

यह और इसके बाद के दो नय शब्द के अर्थ का विचार करते हैं। किसी शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है इस प्रश्न का उत्तर तीन प्रकार के नय अपनी-अपनी पद्धति से देते हैं। प्रत्येक परवर्ती नय, अपने से पूर्ववर्ती नय की अपेक्षा शब्द के अर्थ को अधिक संकीर्ण बनाता है। 'शब्द नय' शब्द में अधिक-से-अधिक अर्थ का आरोपण करता है। इस शब्द नय का आशय यह होता है कि एकार्थवाचक शब्द लिंग, वचनादि क्रम से परस्पर भिन्न होने पर भी एक ही अर्थ के द्योतक होते हैं।

समभिरूढ़

समभिरूढ़ प्रत्येक शब्द के मूल धातु की ओर ले जाता है। वह बतलाता है कि एकार्थवाचक शब्द भी वस्तुतः भिन्न-भिन्न अर्थ को द्योतित करते हैं। शक्र तथा पुरन्दर शब्द, शब्द नय के अनुसार एकार्थवाची हैं परन्तु समभिरूढ़ के अनुसार शक्तिशाली पुरुष ही शक्र और पुरविदारक ही पुरन्दर कहलाएगा। अर्थात् इस नय के अनुसार शक्र और पुरन्दर का अर्थ भिन्न-भिन्न है।

एवंभूत

जहाँ तक पदार्थ निर्दिष्ट रूप से क्रियाशील होता है उसी समय तक उस पदार्थ को तत्सम्बन्धी क्रियावाचक शब्द से पहिचाना जा सकता है; उसके

दूसरे क्षण से उस शब्द का व्यवहार बन्द हो जाता है। जब तक पुरुष शक्तिशाली है तभी तक वह 'शक्र' है; शक्तिहीन होते ही यह व्यवहार बन्द हो जाता है अर्थात् फिर उसे शक्र नहीं कह सकते। इसे 'एवंभूत नय' कहते हैं।

नय से पदार्थ का एक देश मालूम होता है। पदार्थ के यथार्थ और पूर्ण स्वरूप को जानने के लिए जैनागम स्वीकृत स्याद्वाद का आश्रय लेना चाहिए। यह स्याद्वाद अथवा सप्तभंगी जैन दर्शन की एक महान् से महान् विशिष्टता है।

स्याद्वाद

पदार्थ अगणित गुण के आधार रूप हैं। इन समस्त भिन्न गुणों का पदार्थ में क्रमशः आरोप करने का नाम स्याद्वाद नहीं है। एक एवं अद्वितीय गुण का पदार्थ में आरोपण किया जाय तो उसका सात प्रकार से निरूपण हो सकता है—उसका वर्णन सात प्रकार से किया जा सकता है। इस सप्तधा विवरण का नाम स्याद्वाद अथवा सप्तभंगी नय है। उदाहरणार्थ, घट नामक पदार्थ में अस्तित्व नामक गुण का आरोप करें तो उसका निरूपण निम्नलिखित विधि से सात प्रकार से कर सकते हैं—

(१) स्यादस्ति घटः अर्थात् किसी एक अपेक्षा से [किसी एक दृष्टिकोण से—विचार से] घट है ऐसा कह सकते हैं। परन्तु 'घट है' इसका अभिप्राय क्या है? इसका यह अर्थ नहीं कि घट एक नित्य, सत्य, अनन्त, अनादि, अपरिवर्तनीय पदार्थ रूप में विद्यमान है। 'घट है' इसका अर्थ यही है कि स्व-रूप के विचार से अर्थात् घट रूप से; स्व-द्रव्य के विचार से अर्थात् वह मिट्टी का बना है इस दृष्टि से; स्व-क्षेत्र के विचार से अर्थात् अमुक शहर में (पटना शहर में) और स्व-काल अर्थात् अमुक एक ऋतु (बसन्त ऋतु) में वह वर्तमान है।

(२) स्यान्नास्ति घटः अर्थात् किसी एक अपेक्षा से घट नहीं है। पर-रूप अर्थात पट-रूप में, पर-द्रव्य के विचार से अर्थात् स्वर्णमय अलंकार की अपेक्षा से, पर-क्षेत्र अर्थात् अन्य किसी शहर की (गांधार की) अपेक्षा से और पर-काल की अर्थात् अन्य किसी ऋतु (शीत ऋतु) की अपेक्षा से यह घट नहीं है, यह भी कह सकते हैं।

(३) स्यादस्ति नास्ति च घटः अर्थात् एक अपेक्षा से घट है और अन्य अपेक्षा से घट नहीं है। स्व-द्रव्य, स्व-क्षेत्र की अपेक्षा से वह घट है और पर-द्रव्य, पर-क्षेत्र की अपेक्षा से वह घट नहीं है। यह बात ऊपर कही जा चुकी है।

(४) स्यादवक्तव्यः घटः अर्थात् एक अपेक्षा से घट अवक्तव्य है। एक ही समय में हमें ऐसा प्रतीत हो कि घट है और घट नहीं है तो इसका अर्थ यह हुआ कि घट अवक्तव्य हो गया, क्योंकि भाषा में कोई भी शब्द ऐसा नहीं है, जो एक ही समय में अस्तित्व और नास्तित्व को प्रकट कर सके। तीसरे भेद में हम जो घट का अस्तित्व देख आए हैं उसका आशय यह नहीं है कि जिस क्षण में हमें घट का अस्तित्व प्रतीत होता है उसी क्षण में उसका नास्तित्व प्रतीत होता है।

(५) स्यादस्ति च अवक्तव्यः घटः अर्थात् एक अपेक्षा से घट है और वह भी अवक्तव्य है। प्रथम और चतुर्थ भेद को एक साथ मिलाने से यह भेद समझ में आ सकेगा।

(६) स्यान्नास्ति च अवक्तव्यः घटः अर्थात् एक अपेक्षा से घट नहीं है और वह भी अवक्तव्य है। इस नय का आधार दूसरे और चौथे भेद का संकलन है।

(७) स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्यः घटः अर्थात् एक अपेक्षा से घट है, घट नहीं है और वह भी अवक्तव्य है। यह सप्तम् भेद तीसरे और चौथे भेद के योग से बना है।

जैन दार्शनिकों का कहना है कि यथार्थ वस्तुविचार के लिए यह सप्तभंगी अथवा स्याद्वाद अनिवार्य है। स्याद्वाद का आश्रय लिए बिना वस्तु का स्वरूप समझ में नहीं आ सकता। 'घट है' ऐसा कहने मात्र से उसका समस्त विवरण हो गया ऐसा नहीं कह सकते। 'घट नहीं है' ऐसा कहने में भी बहुत अपूर्णता रह जाती है। 'घट है और घट नहीं है' ऐसा कह देना भी काफी नहीं है। 'घट अवक्तव्य है' यह भी पूर्ण विवरण न हुआ। जैन इस बात पर बड़ा जोर देते हैं कि सप्तभंगी के एक दो भेदों की सहायता से वस्तु स्वभाव का पूर्ण निरूपण नहीं हो सकता।

और जैनों का उक्त मन्तव्य नगण्य कह देने योग्य नहीं है। प्रत्येक भेद में कुछ-न-कुछ सत्य तो अवश्य है। पूर्वोक्त सातों नय की दृष्टि से देखा जाय तभी पूर्ण सत्य एवं तथ्य मालूम हो सकता है। जिस प्रकार अस्तित्व के विषय में सप्तभंगी का क्रमशः व्यवहार हुआ है उसी प्रकार नित्यता आदि गुणों पर भी उसे घटा सकते हैं। अर्थात् पदार्थ नित्य है या अनित्य यह जानने के लिए भी जैन पूर्वोक्त सप्तभंगी का आश्रय लेते हैं। जैन सिद्धान्त तो कहता है कि पदार्थ तत्व के निरूपण के लिए स्याद्वाद ही एकमात्र उपाय है।

[क्रमशः

कुमारपाल देव-२

[गुजरात कहानी]

जिन्होंने दुर्दिन में उनकी सहायता की थी कुमारपाल उन्हें भूले नहीं थे। अतः उन्होंने अपनी पत्नी भोपाल दे को पटरानी बनाया। कृषक भीम सिंह को बनाया अपना प्रधान अंग रक्षक। ग्राम्य वधु श्री देवी से राज्याभिषेक तिलक करवाया और ढोलक ग्राम पुरस्कार स्वरूप दिया। सज्जन को सात ग्रामों का सूबेदार नियुक्त किया। उदायन को वृद्ध प्रधान और उदायन पुत्र वाग्भट्ट को महामात्य का पद प्रदान किया। हेमचन्द्राचार्य बने कुमारपाल के गुरु।

कुमारपाल को राज्य तो सहज ही मिल गया किन्तु उन्हें विरोधियों के सम्मुखीन होना पड़ा। उन्हें प्रौढ़ावस्था में राज्य मिला इसलिए या विदेश पर्यटन जात अनुभव के लिए हो राज्य संचालन उन्होंने स्वयं ही करना प्रारम्भ किया। यह बात राज्य कर्मचारियों को अच्छी नहीं लगी। अतः उन्होंने कुमारपाल की हत्या का षड़यन्त्र रचकर एक घातक भी नियुक्त कर दिया। भाग्यवश कुमारपाल को इस षड़यन्त्र का पता चल गया। फलतः उन्होंने सभी षड़यन्त्रकारियों की हत्या करवा दी।

अपने बहनोई कान्हड़देव की सहायता से कुमारपाल ने गुजरात का सिंहासन प्राप्त किया था। इसीलिए कान्हड़देव कुमारपाल को अनुकम्पा की दृष्टि से देखते थे और उनके पूर्व जीवन की दुर्दशा सबसे कहते फिरते। कुमारपाल ने देखा इससे वे सबके उपहास के पात्र बनते हैं। फिर भी उनके पूर्वकृत उपकार को स्मरण कर उन्होंने कान्हड़देव को बुलवाया और ऐसा करने को मना किया। किन्तु कान्हड़देव का निवृत्त होना तो दूर उन्हें पामर, अकृतज्ञ इत्यादि कहकर लोगों के सम्मुख ही उनकी भर्त्सना करने लगे। तब बाध्य होकर कुमारपाल को मल्लों द्वारा उनका अंग-भंग और दोनों आँखें निकलवा कर उनके घर भिजवाना पड़ा।

किन्तु कुमारपाल की विपत्ति का अन्त यहीं नहीं हुआ। जिस उदायन पुत्र बाहड़ को सिद्धराज जयसिंह मृत्युशय्या पर सोए हुए ही दत्तक पुत्र रूप में ग्रहण करने की सोच रहे थे वह भी गुजरात परित्याग कर सपादलक्षीय राजा के पास चला गया और उन्हें समझा-बुझाकर प्रचुर अर्थदान की प्रतिश्रुति दी।

तत्पश्चात् उनकी सेना लेकर गुजरात पर आक्रमण कर दिया। बाध्य होकर कुमारपाल को युद्ध के लिए प्रस्थान करना पड़ा।

युद्धक्षेत्र में भी जब कुमारपाल ने देखा कि सामन्तगण उनके आदेश का पालन नहीं कर रहे हैं तो वे समझ गये कि यह युद्ध उन्हें एकाकी ही करना होगा। तब उन्होंने महावत से अपना हाथी सपादलक्षीय राजा के हाथी के पास ले जाने को कहा। जब महावत ने भी उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया तो वे बोले—'तुम्हें भी क्या बाहड़ का उत्कोच मिला है?' महावत ने कहा—'नहीं महाराज! कलह पंचानन हाथी और सामल महावत उत्कोच कभी कल्पना में भी ग्रहण नहीं करते। पर सपादलक्षीय राजा के समीप बाहड़ इतना चिल्ला रहा है कि हाथी उस ओर जाना नहीं चाहता।' यह सुनते ही कुमारपाल ने अपनी चद्दर से हाथी के कान बन्द कर दिये। तब सामल कलह पंचानन हाथी को सपादलक्षीय राजा के सम्मुख ले गया। बाहड़ ने चउलिग नामक जिस राज महावत को उत्कोच देकर वशीभूत किया था वह महावत ही हाथी को लिए आ रहा है समझकर स्वयं के हाथी की पीठ से कूदकर इस हाथी पर आने का जैसे ही उपक्रम किया कि सामल ने हाथी को कुछ पीछे हटा लिया। परिणामतः बाहड़ जमीन पर गिर पड़ा और कुमारपाल के देह-रक्षो सैनिकों द्वारा धृत हुआ। कुमारपाल भी तब सहसा सपादलक्षीय राजा के सम्मुखीन होकर उसे हथियार उठाने को कहते हुए उस पर वाण वर्षण करने लगे। वाणों से आहत होकर सपादलक्षीय राजा हाथी की पीठ पर लुढ़क पड़ा। तब कुमारपाल 'जीत लिया, जीत लिया' कहकर अपने हाथी को युद्ध क्षेत्र में इधर-उधर दौड़ाने लगे। नेतृत्व विहीन सपादलक्षीय सैनिक भाग छूटे।

सामन्तों ने जब देखा कुमारपाल से सकना सम्भव नहीं है तो उन्होंने उनकी वश्यता स्वीकार कर ली। कुमारपाल स्वयं भी बहुत साहसी थे। अजमेर के अर्णोराज को भी उन्होंने युद्ध में परास्त किया। मालव के वल्लालों पर आधिपत्य विस्तृत किया। कंकण के मल्लिकार्जुन को हराया। सौरठ के समर सिंह ने भी उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार १८ देशों पर उन्होंने अपना आधिपत्य प्रतिष्ठित किया। कुमारपाल की राज्य सीमा उत्तर में पंजाब, दक्षिण में बिन्ध्याचल, पूर्व में गंगा और पश्चिम में सिन्धु नदी तक विस्तृत थी। गुजरात की राज्य-सीमा इतनी विस्तृत अन्य किसी राजा के राज्यकाल में नहीं हुई।

हेमचन्द्राचार्य और कुमारपाल के सम्पर्क की बात पहले ही आ चुकी है।

हेमचन्द्राचार्य के लिए कुमारपाल के द्वार सदैव खुले रहते थे। कुमारपाल भी उनका आदर करते थे। किसी विषय पर परामर्श करना होता तो वे राजपुरोहित के साथ न कर हेमचन्द्राचार्य के साथ करते थे। हेमचन्द्राचार्य से उनकी यह घनिष्ठता राजपुरोहित आकियाग को अच्छी नहीं लगती। एकदिन तो उसने हेमचन्द्राचार्य के सम्मुख ही यह कह डाला कि 'महाराज, इसका दम्भ तो देखिए—शास्त्रों में लिखा है विश्वामित्र, पराशर आदि ऋषि जो कि फल-मूल खाकर ही रहते थे वे भी सुन्दर स्त्री को देखकर काम के वशीभूत हो जाते थे और यह दूध, दही, घी खाते हुए कैसे इन्द्रिय निग्रह कर सकता है ?'

यह सुनकर हेमचन्द्राचार्य बोले—'इसमें आश्चर्य क्या है ? जो सिंह मांस-भक्षण करता है वह वर्ष में एक बार ही काम के वशीभूत होता है। किन्तु कर्कश शिलाकन को खाने वाला पारावात प्रतिनियत कामी बना रहता है।'

पुरोहित के निरूत्तर होने पर अन्य एक व्यक्ति बोल उठा—'महाराज, यह सूर्य को नहीं मानता।'

हेमचन्द्राचार्य ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा—'महाराज, लोक धारणकारी सूर्य को हमलोग ही वास्तविक रूप से हृदय में धारण करते हैं। कारण जैसे ही वह अस्तगमन रूप संकट के सम्मुखीन होता है हमलोग अन्न जल का परित्याग कर देते हैं।'

अन्य एक दिन की घटना है। बैठने के पूर्व हेमचन्द्राचार्य ने अपने रजोहरण से उस स्थान को परिष्कृत किया। यह देखकर कुमारपाल ने इसका कारण पूछा। हेमचन्द्राचार्य बोले—'हो सकता है यहाँ कोई सूक्ष्म जीव हो इसीलिए स्थान का परिष्कार कर लिया।' कुमारपाल ने कहा—'यदि प्रत्यक्ष कोई जीव दिखाई पड़े तो यह उचित है अन्यथा यह एक व्यर्थ का प्रयास है।' इसके उत्तर में आचार्य बोले—'महाराज, आप जो चतुरंगिनी सेना प्रस्तुत करते हैं वह शत्रु दिखाई देने पर करते हैं या पूर्व ? जिस प्रकार वह राज-व्यवहार है उसी प्रकार यह धर्म व्यवहार है।'

एकबार कुमारपाल ने आचार्य से पूछा कि वे कुछ ऐसा करना चाहते हैं जिससे उनकी कीर्त्ति अक्षय रहे। हेमचन्द्राचार्य ने प्रत्युत्तर दिया—'वह तभी सम्भव हो सकता है यदि विक्रमादित्य की भाँति संसार को ऋण से मुक्त करें या सोमेश्वर के काष्ठमन्दिर को जो कि समुद्र के जल से जीर्ण-शीर्ण हो गया है पाषाणमय बनवा दें।'

हेमचन्द्राचार्य के कथनानुसार कुमारपाल ने सोमेश्वर का प्रस्तरमय प्रासाद निर्माण करवाना स्थिर किया और पूछा—'कैसे यह कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो सकता है ?' कुछ सोचकर हेमचन्द्राचार्य ने जवाब दिया—'महाराज, इस कार्य को निर्विघ्न समाप्त करने के लिए आपको इन दो नियमों में से किसी एक का पालन करना होगा। जब तक मन्दिर का निर्माण नहीं हो जाता है तब तक आप ब्रह्मचर्य का पालन करें या मांस मदिरा का त्याग करें।' कुमारपाल ने मद्य-मांस त्याग का व्रत लिया। दो वर्षों के पश्चात् जब मन्दिर निर्माण कार्य पूर्ण हो गया तब कुमारपाल ने गुरु के निकट जाकर व्रत-मुक्ति की प्रार्थना की। तब हेमचन्द्राचार्य बोले—'आप यदि भगवान चन्द्रचूड़ का दर्शन करना चाहते हैं तो सोमेश्वर यात्रा के पश्चात् ही व्रत भंग कीजिए।'

यह तो हम पूर्व ही कह आए हैं कुमारपाल की राजसभा में पुरोहित सहित अन्य विरोधियों की भी कमी नहीं थी। हेमचन्द्राचार्य का अभ्युदय देखकर ईर्ष्यावश वे कुमारपाल को जाकर बोले—'महाराज, ये जैन यति बड़े चालाक हैं। केवल आपका मन जीतने के लिए आपकी हाँ में हाँ करते हैं। विश्वास न हो तो कल जब वे आएँ तब आप उन्हें अपने साथ सोमेश्वर की यात्रा करने को कहिए। दूसरों के धर्म तीर्थ में वे कभी भी आपके साथ नहीं जाएँगे।'

दूसरे दिन प्रातः काल हेमचन्द्राचार्य के आते ही कुमारपाल ने यह निवेदन किया। यह सुनकर हेमचन्द्राचार्य बोले—'बुभुक्षुओं के लिए जिस प्रकार निमन्त्रण का प्रयोजन नहीं रहता उसी प्रकार तपस्वियों को तीर्थयात्रा जाने के लिए राजा के आग्रह की आवश्यकता नहीं रहती।' इस प्रकार हेमचन्द्राचार्य के सोमेश्वर की तीर्थयात्रा के लिए सम्मत होने पर कुमारपाल बोले—'आपके लिए पालकी आदि की व्यवस्था करूँ ?' हेमचन्द्राचार्य ने उत्तर दिया—'महाराज, हमलोग पैदल चलकर पुण्यार्जन करते हैं। अतः थोड़ा-थोड़ा चलकर शत्रुंजय गिरनार आदि तीर्थों का दर्शन करता हुआ पत्तन में मैं आपसे मिलूँगा।' तत्पश्चात् हेमचन्द्राचार्य अनहिल्लपुर से विहार कर तीर्थों का दर्शन करते हुए ठीक समय पर पत्तन में कुमारपाल से मिले।

तब उनके विरोधियों ने राजा से कहा—'हेमचन्द्राचार्य पत्तन आ गए तो क्या हुआ वे निश्चय ही सोमेश्वर की पूजा नहीं करेंगे। अतः आप उन्हें पूजा के लिए कहिए।'

कुमारपाल ने वैसा ही कहा। उन्होंने यह स्वीकृत कर शिवपुराण की

दीक्षा विधि के अनुसार आह्वान, अवगुण्ठन, मुद्रा, मन्त्रन्यास, विसर्जन आदि पंचोपचार विधि से शिवपूजा कर यह स्तोत्र पाठ किया।

'किसी भी धर्म में किसी भी नाम से तुम चाहे कोई क्यों न हो किन्तु दोष और पाप रहित तुम एक ही हो। इसलिए हे भगवन्, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ।'

हेमचन्द्राचार्य ने केवल पूजा और स्तुति ही नहीं की उन्होंने सोमेश्वर को दण्डवत प्रणाम कर सबको चकित कर दिया।

हेमचन्द्राचार्य के पश्चात् कुमारपाल ने सोमेश्वर की पूजा की। तदुपरान्त धर्म शिला पर बैठकर तुलापुरुषदान, गजदान आदि महादान देकर कर्पूर से शिव की आरती की। इसके बाद सबको हटाकर केवल हेमचन्द्राचार्य के साथ उन्होंने गर्भगृह में प्रवेश किया। फिर आचार्य से बोले—'महादेव के जैसा देव नहीं है, ना ही मेरे जैसा राजा और आप जैसा महर्षि। भाग्य से इन तीनों का संयोग हुआ है। अतः नाना दर्शनों के भिन्न-भिन्न प्रमाण से जिस देवत्व को लेकर चित्त संदिग्ध है उस मुक्तिदायक सत्य देवता का वास्तविक स्वरूप क्या है वह इस तीर्थ क्षेत्र में आप मुझे बताएँ।' यह सुनकर हेमचन्द्राचार्य कुछ सोचकर बोले—'महाराज, दर्शनों की पुरानी बातें छोड़िए। मैं सोमेश्वर देव को आपके सम्मुख प्रत्यक्ष कर देता हूँ। मुक्ति मार्ग क्या है यह आप उनके मुख से ही सुनिए।' कुमारपाल आश्चर्य चकित होकर कहने लगे—'क्या ऐसा होना सम्भव है?' 'अवश्य ही सम्भव है। जब अप्रत्यक्ष भाव से यहाँ देवता वर्तमान हैं तो वे अवश्य ही आविर्भूत होंगे। मैं ध्यान लगाता हूँ और आप तब तक कृष्ण अगरु अग्नि में निक्षेप करते रहें जब तक कि सोमेश्वर आविर्भूत नहीं हो जाते हैं'—ऐसा कहकर हेमचन्द्राचार्य ध्यानस्थ हो गए और कुमारपाल उनके आदेशानुसार अग्नि में कृष्ण अगरु निक्षेप करते रहे। धूप के धुएँ से जब कक्ष में अन्धकार हो गया व घी का प्रकाण्ड दीपक जलता-जलता बुझ गया तभी कुमारपाल ने द्वादश सूर्यों के तेज को प्रसारित होते देखा। फिर श्रेष्ठ सुवर्ण की भाँति द्युतिमय, चक्षुओं से जो न देखा जा सके ऐसे अपूर्व रूप सम्पन्न जटाजूटधारी एक तपस्वी को देखा। कुमारपाल ने धरती पर लेटकर उन्हें प्रणाम किया। बोले—'भगवन्, आपके दर्शन कर नेत्र कृतार्थ हो गए हैं। अब आदेश देकर इन कर्ण युगलों को भी कृतार्थ कीजिए।' तब उस द्युतिमय तपस्वी के मुख से यह वाणी निकली—'राजन्, यह महर्षि

सकल देवताओं का अवतार है। पूर्ण परब्रह्म ज्ञात हो जाने से ये त्रिकाल के स्वरूप को जानते हैं। इनके द्वारा कथित मुक्तिमार्ग असन्दिग्ध रूप से मुक्तिमार्ग है'—ऐसा कहकर वे दिव्य तपस्वी अन्तर्धान हो गए। हेमचन्द्राचार्य ने भी ध्यान भंगकर ज्योंही 'राजन्' कहा कुमारपाल राज्याभिमान त्याग कर 'गुरुदेव, आदेश दीजिए' कहते हुए उनके चरणों में लोट गए। उसी समय हेमचन्द्राचार्य ने जीवन पर्यन्त मद्य-मांस परित्याग का उन्हें नियम दिया। तदुपरान्त दोनों अनहिल्लपुर लौट आए।

अब कुमारपाल हेमचन्द्राचार्य के शिष्य बनकर परम आर्हत् हो गए। उन्होंने स्वयं मद्य-मांस का परित्याग किया। इतना ही नहीं अपने अठारह राज्यों में भी जीव हत्या नहीं करने का आदेश दिया। जो पुत्रहीन अवस्था में मर जाते उसकी सम्पत्ति राजा ग्रहण करते। हेमचन्द्राचार्य के आदेश से कुमारपाल ने विधवाओं की सम्पत्ति ग्रहण करनी बन्द कर दी। कहते हैं उन्होंने १४०० जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया और १६०० जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार। २१ ज्ञान भण्डारों की स्थापना करवायी और ७ बार तीर्थ यात्राएँ की। वस्तुतः उनके शासन में देश की समृद्धि का अन्त नहीं था। उनका जीवन पवित्र था। अतः लोग उन्हें राजर्षि कहकर अभिहित करने लगे।

कुमारपाल ने तीस वर्षों तक शासन किया। हेमचन्द्राचार्य की मृत्यु कुमारपाल की मृत्यु के कुछ पूर्व हुई। कुमारपाल उनकी मृत्यु का शोक सहन नहीं कर सके अतः आचार्य की मृत्यु के कुछ दिनों पश्चात् ही ८१ वर्ष की उम्र में वे भी परलोक गमन कर गए।

आचार्य हेमचन्द्र सिद्धराज के द्वारा सम्मानित हुए थे। सिद्धराज के अनुरोध पर उन्होंने 'सिद्ध-हेम' व्याकरण की रचना की। कुमारपाल के वे गुरु थे। कुमारपाल के लिए उन्होंने 'योगशास्त्र' की रचना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने काव्य, पुराण, अभिधान, अलंकार, न्याय इत्यादि विभिन्न विषयों पर जितने ग्रन्थ रचे उनकी इयत्ता नहीं है। इसीलिए तो उन्हें कलिकाल सर्वज्ञ कहकर अभिहित किया जाता था। वास्तव में वे वैसे ही थे।

मेरुतुंगाचार्य की 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के आधार से

श्रीपाल

[पूर्वानुवृत्ति]

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

[स्थान उज्जयिनी। राजपथ। राज प्रासाद की दासी कौमुदिका का हाथ की अंगूठी देखते हुए प्रवेश। दूसरी ओर से अन्य दासी वकुलावली आती है।]

बकुलावली : अरी ओ कौमुदी! इतना क्या घमण्ड हो गया है कि मैं तेरे बगल से गुजर रही हूँ और तुझे कुछ ज्ञात ही नहीं?

कौमुदिका : अरे वो सब कुछ नहीं है। सुनार के यहाँ से देवी की यह नागमणि जड़ित अंगूठी लेने गयी थी। बस इसी को देखते-देखते आ रही थी अतः तुझे देख नहीं पायी।

बकुलावली : जरा दिखा तो। [अंगूठी देखकर] तेरी दृष्टि उचित स्थान पर ही पड़ी है। किरणों की कैसी छटा विच्छुरित हो रही है इस अंगूठी से। ऐसा लग रहा है जैसे पुष्प से पुष्प पराग झर रहा है। मानो, तेरे हाथ में अंगूठी नहीं एक दिव्य पुष्प प्रस्फुटित हो गया है।

कौमुदिका : तू कहाँ जा रही है?

बकुलावली : सुर सुन्दरी और मैना सुन्दरी के आचार्यों को संदेश देने। महाराज ने उन्हें यह जानने के लिए बुलवाया है कि उनकी शिक्षा कहाँ तक हुई है।

कौमुदिका : क्यों? यह सब किसलिए?

बकुलावली : इसलिए कि लड़कियाँ बड़ी हो गयी हैं। अब उनके लिए सत्पात्र खोजना होगा। फिर सुर सुन्दरी तो कुरु जांगाल के राजा अरिदमन को हृदय ही दे बैठी है।

कौमुदिका : अच्छा ऐसी बात है?

बकुलावली : ऐसी बात तो है ही। तभी तो आज कितने दिन हो गए अरिदमन महाराज की सम्मति पाने के लिए उनका अतिथि बना उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा है।

कौमुदिका : ओहो! तो बात इतनी दूर चली गयी है। किन्तु, दोनों एक दूसरे से मिले कैसे?

बकुलावली : मिले महाकाल मन्दिर में। प्रथम दर्शन में ही आँखें चार हुईं और एक दूसरे को हृदय दे बैठे।

कौमुदिका : ठीक ही कह रही है। कामदेव कब किस पर आक्रमण कर बैठे कहा नहीं जा सकता। तो सुर सुन्दरी के लिए तो पात्र मिल गया। और मैना सुन्दरी?

बकुलावली : मैना सुन्दरी के मन को समझना बहुत कठिन है। वह तो सब समय गम्भीर रहती है। उसकी गणना साधारण बालिकाओं में नहीं की जा सकती।

कौमुदिका : सो तो होगा ही। उसने अर्हत् मतावलम्बियों से शिक्षा जो प्राप्त की है। उसका सब कुछ विलक्षण है।

बकुलावली : पर कहना होगा लड़की है बड़ी सुशील। सुर सुन्दरी की तरह घमण्डी नहीं है।

कौमुदिका : राजकन्या का सुशील होना भी क्या अच्छा है? उन्हें तो घमण्डी ही होना चाहिए। मारे अहंकार के उनका तो पाँव ही धरती पर नहीं पड़ना चाहिए। यदि दास-दासियों के नाक में दम नहीं किया तो राजकन्या ही क्या?

बकुलावली : तू भी कैसी बात कर रही है?

कौमुदिका : अच्छा तो तू जा। मैं देवी के पास जा रही हूँ।

द्वितीय दृश्य

[उज्जयिनी की राजसभा। राजा प्रजापाल सिंहासन पर बैठे हैं। मैना सुन्दरी और सुर सुन्दरी सम्मुख खड़ी है। दाहिनी ओर उनके आचार्य आसीन हैं। बायीं ओर बैठा है कुरु जांगालपति अरिदमन। उसी के पास बैठे हैं मन्त्री, सेनापति एवं अन्य सभासद्गण]

प्रजापाल : [कन्याओं की ओर देखकर] तुमलोगों की शिक्षा के विषय में आचार्यों ने जो कुछ कहा सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। तुमलोगों ने भी जिज्ञासित प्रश्नों के जो उत्तर दिए उन्हें सुनकर तो मेरा हृदय गर्व से भर उठा है। आज मेरे आनन्द की सीमा नहीं है। अतः आज तुमलोग अपना मनचाहा कुछ माँग सकती हो। तुमलोग यह तो अवश्य ही जानती होगी कि मैं धनवान को निर्धन बना सकता हूँ दरिद्र को राजा। मैं जिस पर प्रसन्न हूँ संसार में उसके लिए अप्राप्य कुछ नहीं है। किन्तु जिससे रुष्ट हो जाऊँ उसका कहीं ठिकाना नहीं है।

सुर सुन्दरी : आप ठीक कह रहे हैं पिताजी। क्योंकि संसार में जीवन-दाता दो ही होते हैं। पहला मेघ, दूसरा राजा। यदि इनका अभाव हो जाए तो संसार में उथल-पुथल मच जाए।

प्रथम सभासद : कितने सुन्दर ढंग से आपने बात कही है राजकुमारी। ऐसी वेदग्धपूर्ण भाषा तो इसके पूर्व मैंने सुनी ही नहीं।

अन्य सभासद : हमलोगों ने भी कभी नहीं सुनी।

प्रजापाल : तेरी इस बात को सुनकर तो बेटी मेरी छाती फूल उठी है। तुझ जैसी विदुषी कन्या को प्राप्तकर मैं धन्य हो गया हूँ। मेघ और राजा। मेघ जिस प्रकार आयाचित भाव से वारि-वर्षण करता है मैं भी उसी प्रकार आज तुझ पर मेरी कृपा वारि का वर्षण करूँगा। मैं राजसभा में यह घोषित करता हूँ कि तेरी इच्छानुसार मैं कुरु जांगालपति अरिदमन के साथ तेरा विवाह कर दूँगा।

सभी : जय महाराज प्रजापाल की जय! राजकुमारी सुर सुन्दरी की जय! जांगालपति अरिदमन की जय!

प्रजापाल : [मैना सुन्दरी की ओर देखकर] मैना, सभी जब जय ध्वनि कर रहे हैं तो तू क्यों चुपचाप सिर झुकाए खड़ी है? सुरो ने जो बात कही एवं समस्त सभासदों ने जिसका समर्थन किया उसमें तेरी सहमति नहीं है क्या? यदि ऐसा

ही है और तू स्वयं को बहुत चतुरा समझती है तो वह सभा के समक्ष व्यक्त कर।

मैना सुन्दरी : जहाँ लोग मोहजाल से आच्छन्न हैं, राजा अविवेकी हैं वहाँ मेरा बोलना उचित नहीं होगा। फिर भी धर्म के लिए, न्याय के लिए, आपके आदेश का पालन करने के लिए कुछ बोलूँगी। जिसका हृदय ज्ञान के आलोक से आलोकित है वह कभी अज्ञान के अन्धकार में नहीं पड़ सकता। पिताजी, आप अपने हृदय में विवेक को स्थान देकर मिथ्या अभिमान का परित्याग कीजिए। मनुष्य संसार में जो सुख-दुःख का भोग करता है वह कर्माधीन होने के कारण ही। उसे परिवर्तन करने की क्षमता साधारण मनुष्य में तो क्या आपमें भी नहीं है। अभी आपने कहा—मैं धनवान को निर्धन एवं दरिद्र को राजा बना सकता हूँ वह ठीक नहीं है। यदि किसी के अशुभ कर्म का उदय है तो आप लाख चेष्टा करने पर भी उसे सुखी नहीं बना सकते और यदि शुभ कर्म का उदय है तो आप उसे उस सुख से वंचित नहीं कर सकते। अतः मेरा आपसे यही निवेदन है कि आप झूठे अभिमान का परित्याग कीजिए। इसी में आपका कल्याण है।

प्रजापाल : [क्रुद्ध होकर] वाह मैना, वाह ! खूब शिक्षा पायी है तूने। तुझे लिखना-पढ़ना सिखाने का यही परिणाम है कि तू भरी सभा में मेरा दोष निकाल कर मुझे अपमानित करे। देख मैना, इन सब बातों से मेरा कुछ बनने-बिगड़ने वाला नहीं है। किन्तु, तूने अपने पाँवों पर कुल्हाड़ी अवश्य मार ली है, अपना भविष्य नष्ट कर लिया है। मैंने इतने दिनों तक तेरा पालन-पोषण किया, बढ़िया से बढ़िया वस्त्रालंकार दिए, सेवा के लिए दास-दासियाँ नियुक्त किए। तुझे सर्वतोभावेन सुखी बनाने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं छोड़ी—तो क्या तेरा आशय है यह सब तुझे तेरे भाग्य से मिला ?

मैना सुन्दरी : पिताजी, मेरे कथन को आप अन्यथा न लें। आप क्रोध का परित्याग करें तभी आप समझ सकेंगे कि मैं जो कुछ कह

रही हूँ वह ठीक है। मैं फिर कहती हूँ शुभ कर्मों के उदय से ही मेरा जन्म आपके वंश में हुआ और आप द्वारा जो भी सुख-सुविधा, आराम मिला वह मेरे शुभ कर्मों का ही परिणाम है। आप यदि शान्त भाव से सोचेंगे तो···

प्रजापाल : चुप रह मैना। अब मैं तेरी और बातें सुनना नहीं चाहता। यदि प्रारब्ध पर ही तेरा इतना विश्वास है तो मैं तेरा विवाह एक ऐसे वर से करूँगा जिसे तेरा प्रारब्ध ही यहाँ खींच लाया होगा। देखता हूँ फिर तू तेरे प्रारब्ध के बल पर कितना सुख भोग करती है।

[राजा चले जाते हैं। मैना चुपचाप खड़ी रहती है फिर चली जाती है। मात्र सभासद के अन्य सभी चले जाते हैं]

प्रथम सभासद : मूर्खता, मूर्खता, भीषण मूर्खता। मूर्खता के अतिरिक्त इसे और क्या कहा जा सकता है?

द्वितीय सभासद : तुम ठीक ही कहते हो। बलिहारी है उस शिक्षा की जिसने राजा की प्रसन्नता को मुहूर्त्त भर में ही अप्रसन्नता में परिवर्तित कर दिया।

तृतीय सभासद : और क्या? किससे शिक्षा प्राप्त की है उसने? क्षपणकों से ही तो? वे सब उद्दण्ड तो होते ही हैं। उनमें व्यवहारिक बुद्धि तो जरा भी नहीं होती।

प्रथम सभासद : ठीक कहते हो तुम। उनलोगों में विवेक नम्रता जैसी कोई चीज ही नहीं होती। अन्ततः गुरुजन समझ कर उसका चुप रहना ही उचित था।

तृतीय सभासद : छीः! छीः! छीः!

[क्रमशः

हिन्दी जैन साहित्य

—नेमिचन्द्र जैन

आन्तरिक रूप से विश्व के समस्त साहित्य में भावों, विचारों और आदर्शों का सनातन साम्य-सा है। अतः आन्तरिक भावधारा और जीवन-मरण की समस्या एक है। प्राकृतिक रहस्यों से चकित होना तथा प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर पुलकित होना मानव मात्र के लिए समान है। साहित्य में साधना और अनुभूति के समन्वय से समाज, संसार और सम्प्रदाय से ऊपर सत्य एवं सौन्दर्य का चिरन्तन रूप पाया जाता है। इसी कारण साहित्यकार चाहे वह किसी भी जाति, समाज, देश या धर्म का हो, अनुभूति का भण्डार समान रूप से ही अर्जित करता है। वह सत्य और सौन्दर्य की तह में प्रविष्ट हो अपने मानस से भावराशि रूपी मुक्ताओं को चुन-चुन कर शब्दावली की लड़ी में शिव की साधना करता है।

सौन्दर्य पिपासा मानव की चिरन्तन प्रवृत्ति है। जीवन की नश्वरता और अपूर्णता की अनुभूति सभी करते हैं, आबाल-वृद्ध सभी इसका मर्म जानने के लिए उत्सुक रहते हैं। इसी कारण साहित्य सार्वजनीन अनुभूति के प्राची पर उदय लेता है। मानव के भीतर चेतना का एक गूढ़ और प्रबल आवेग है, अनुभूति इसी आवेग की सच्ची, सजीव और साकार प्रतिमा है। अतएव साहित्य में साम्प्रदायिक या जातिगत कोई ऐसा भेद नहीं होता, जो उसे विकृत या विरूप कर सके। अतः सत्य अविच्छिन्न, एक और अखण्ड है, उसमें किसी प्रकार का भेद करना, मानवता में भेद डालना है।

जैन साहित्य भी उसी वाङ्मय का एक अंग है, जिसमें मानवता का अखण्ड रूप से विश्लेषण किया गया है। इस साहित्य के स्रष्टाओं ने अखण्ड चैतन्य आनन्दरूप आत्मा का ही अपने अन्तस् में साक्षात्कार किया और साहित्य में उसी की अनुभूति को मूर्तरूप प्रदान कर सौन्दर्य के शाश्वत प्रकाश की रेखाओं द्वारा शब्दमय चित्र अंकित किया है। इन्होंने अपनी अनुभूति को आत्म-साधना का विषय बनाकर चिरन्तन मंगल प्रभात का दर्शन किया तथा आभ्यन्तरिक धरातल में अंकुरित अशांति एवं असन्तोष का उपचार ऊपरी सतह में लगे दोषों के परिमार्जन से न कर प्रस्फुटित अनुभूति के झरने में मज्जन कर किया।

हिन्दी जैन साहित्य का उद्भव :

चिरन्तन सत्य अखण्ड और एक है, पर उसकी उपलब्धि के साधन और प्रकार भिन्न-भिन्न हैं। यही कारण है कि साहित्य में साम्प्रदायिक भेद उत्पन्न होता है। साहित्य का प्रेरणा स्रोत, जो कि जीवन संघर्ष ही है, अनेक परिधानों में अभिव्यंजित होता है। साम्प्रदायिक साहित्यकार अपने दर्शन की मान्यताओं के आवेष्टन से आवेष्टित होकर साहित्य देवता की भव्य मूर्ति अंकित करता है।

हिन्दी की जननी अपभ्रंश है। ७-८ वीं शती में जन साधारण की भाषा बन जाने के कारण अपभ्रंश का प्रचार हिमालय की तराई से गोदावरी और सिन्ध से ब्रह्मपुत्र तक था। यह जीवित और भाव-प्रवण भाषा थी, अतः जैनाचार्यों ने मानव के आदर्शों के प्रचार के लिए तथा मूर्छित मानवता को सचेतन बनाने के लिए इस भाषा में प्रभूत साहित्य रचा। स्तोत्र काव्य, कथा काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं चरितकाव्य जैन लेखकों द्वारा लिखित इस भाषा में पाये जाते हैं। दोहों के क्षेत्र में जोइन्दु के 'परमात्म प्रकाश' और 'दोहासार' इस भाषा के उत्कृष्ट ग्रन्थ हैं। कुछ लोग जोइन्दु को अपभ्रंश भाषा का सर्वप्रथम जैन कवि मानते हैं।[1]

इनके पश्चात् चतुर्मुख आदि कई अपभ्रंश कवियों के नामोल्लेख मिलते हैं। ८-९ वीं शताब्दी में 'रामायण', 'हरिवंश' प्रभृति महाकाव्यों के रचयिता महाकवि स्वयंभू का नाम आता है। स्वयंभू के पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू भी अपभ्रंश के श्रेष्ठ कवि हैं। दशवीं शताब्दी में महाकवि पुष्पदन्त ने अपभ्रंश भाषा में 'महापुराण' नामक महाकाव्य की रचना की। इन्हीं शताब्दियों में जैन कवि देवसेन, महेश्वर सूरि, पद्मकीर्ति, धनपाल, हरिषेण, नयनन्दि, धवल, वोद, श्रीचन्द आदि ने अपनी काव्यकृतियों द्वारा अपभ्रंश साहित्य की श्री वृद्धि की। इनके उपरान्त श्रीधर, कनकामर, धाहिल, यश-कीर्ति प्रभृति कवियों ने सरस कृतियाँ प्रदान कीं। आचार्य हेमचन्द्र ने इस भाषा का व्याकरण लिखा और उदाहरण के रूप में अपभ्रंश के प्राचीन दोहों को सुरक्षित रखा। इन दोहों में शृंगार, सौन्दर्य, नीति, करूणा एवं भय

---

१ देखें 'चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ' के अन्तर्गत डा० ज्योतिप्रसाद जैन का "हिन्दी की जननी अपभ्रंश" शीर्षक निबन्ध, पृ० ४५९।

का बड़ा सुन्दर विवेचन हुआ है। नरसेन, सिंह, धनपाल, माणिक्य राज, पद्मकीर्ति और रइधू मध्यकाल के प्रसिद्ध कवि हैं।[२]

अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी के जैन कवियों ने लोक प्रचलित कहानियों को लेकर और उनमें स्वेच्छया परिवर्तन कर सुन्दर काव्यग्रन्थ लिखे हैं। मध्यकाल के आरम्भ में समाज और धर्म संकीर्ण हो रहे थे। अतः जैन लेखकों ने परम्परा प्राप्त पुराने कथानकों और लोक प्रचलित प्रसिद्ध कथानकों में जैन धर्म का पुट देकर मानव हितकारी साहित्य का सृजन किया। हिन्दी के जैन लेखक प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य की जैन परम्पराओं के साथ विशाल संस्कृत वाङ्मय के विभिन्न अंगों से सुपरिचित थे। बौद्ध साहित्य, पौराणिक साहित्य, तन्त्र साहित्य एवं वेदान्त साहित्य का इन्होंने पूर्णतया अध्ययन किया था। फलतः पुरानी हिन्दी अपभ्रंश से निसृत पर पूर्णतया उससे प्रभावित, में ही साहित्य का निर्माण जैनाचार्यों के द्वारा हुआ। यों तो अपभ्रंश की रचनाएँ १७वीं शती तक मिलती हैं, पर १० वीं, ११ वीं और १२ वीं शती ही अपभ्रंश का स्वर्णकाल है। १३ वीं शती से अपभ्रंश प्रभावित पुरानी हिन्दी में रचनाएँ लिखी जाने लगीं। सोमप्रभ के 'कुमारपाल प्रतिबोध' की ५७ लघु कथाएँ और मेरूतुंग की 'प्रबन्ध चिन्तामणि'[३] के कतिपय आख्यान पुरानी हिन्दी का आदिमरूप कहे जा सकते हैं। जिसे वास्तविक रूप में हिन्दी कहा जाता है, उसके काव्यों का आरम्भ १३ वीं शती के धर्मसूरि के 'जम्बूरासा' से होता है। इसके पश्चात् हिन्दी में जैन साहित्य की परम्परा द्रुतगति से आगे बढ़ती है। १७ वीं और १८ वीं शती तो इस साहित्य का स्वर्णकाल है।

हिन्दी जैन साहित्य का काल वर्गीकरण :

सामयिक अवधि के अनुसार जैन हिन्दी साहित्य के काल को तीन युगों

---

२ विशेष जानकारी के लिए देखें 'भारतीय वाङ्मय' भाग-१ के अन्तर्गत डा० एच० एल० जैन का "अपभ्रंश साहित्य" शीर्षक निबन्ध, पृ० १११-११७।

३ जा मति पाछइ संपजइ, सा मति पहिली होइ।
मुंजु भणइ मुणालवइ, विधन न वेढइ कोई॥
जइ यदु रावणु जाइयो, दहमुहु इक्कु सरीरु।
जननि वियंभी चिन्तवइ, कवन पियावइ खीरु॥
—हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३३

में विभक्त किया जा सकता है—आदिकाल, मध्यकाल और अर्वाचीनकाल। आदिकाल के पुनः दो भेद हैं—अपभ्रंश साहित्यकाल और पुरानी हिन्दी का साहित्यकाल। समय सीमा के अनुसार विक्रम की ८वीं शती से १२वीं शती तक अपभ्रंश साहित्यकाल और १३वीं शती से १६वीं शती तक पुरानी हिन्दी का साहित्यकाल मांना जाएगा। मध्यकाल की समय सीमा १७वीं शती से १९वीं शती तक तथा अर्वाचीन काल विक्रम की १९वीं शती के पश्चात् आरम्भ होता है। प्रस्तुत निबन्ध में उपर्युक्त बर्गीकरण के आधार पर ही हिन्दी जैन साहित्य का परिचय दिया जाएगा।

अपभ्रंश भाषा की उत्पत्ति पाँचवीं शती में हुई थी और ६ठी शती में यह देशी भाषा का रूप ग्रहण कर चुकी थी। अतः छठी से १२वीं शती तक इस भाषा में पुष्कल परिमाण में साहित्य का सृजन होता रहा। आगे चलकर इसी भाषा ने हिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी का रूप और अन्य भाषा-भाषी प्रान्तों में मराठी, गुजराती आदि भाषाओं का रूप धारण किया। लोक भाषा होने के कारण इसी में गीत एवं लोक गाथा साहित्य लिखा गया। इस साहित्य के वर्ण्य विषय सर्व-साधारण के सुख-दुःख, हर्ष, विषाद, हास एवं विलास ही थे। ८-९वीं शती में भक्ति, प्रेम, वीर, करुण, हास्य आदि रसों से सम्बद्ध साहित्य दोहा, चौपाई, कडवक, छत्ता, छप्पय, रोला, प्रभृति छन्दों में शास्त्रीय परम्परा के आधार पर लिखा गया।

अपभ्रंश जैन साहित्य में प्रबन्ध काव्य की धारा आठवीं शती से ही प्रवाहित हुई। जैन कवियों ने प्राचीन कथानकों को लेकर इस देशी भाषा अपभ्रंश में अपने काव्य-भवन का निर्माण किया। तीर्थंकर, चक्रवर्ती और नारायण आदि महान व्यक्तियों के सरस और हृदयग्राही जीवन वृत्त काव्य के उपकरण बने। इतना ही नहीं, किन्तु वैदिक महापुरुषों के चरित्रों एवं लोक प्रसिद्ध प्रेमाख्यान या वीराख्यान के नायकों के जीवन वृत्तों को जैनत्व के आवरण में वेष्टित कर नये कथानक भी उपस्थित किये गए। लोक प्रचलित प्रेमाख्यानों में जैनत्व की रंग-बिरंगी कारीगरी कर साहित्य का निर्माण किया गया। अपभ्रंश भाषा में 'पउम चरिउ'-रामायण, 'हरिवंश'-कृष्ण-चरित, 'रिट्ठनेमि चरिउ', 'भविसयत्तकहा', 'तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार', 'करकंड चरित' और 'बइरि सामि चरिउ' श्रेष्ठ महाकाव्य हैं। इन काव्यों में महाकाव्य के सभी तत्व वर्तमान हैं। अपभ्रंश में 'पंचमी चरित', 'नागकुमार चरित', 'यशोधर चरित', 'नेमिनाथ चउपई' आदि खण्डकाव्य हैं। खण्डकाव्य में जीवन के किसी खास पहलू पर कवि की दृष्टि केन्द्रित रहती है। यद्यपि घटना

विधान, दृश्य योजना और परिस्थिति निर्माण का भी प्रयास खण्डकाव्य के निर्माताओं को करना पड़ता है, पर जीवन के किसी खास अंश की सीमा में बँधकर। उपर्युक्त अपभ्रंश के सभी खण्डकाव्य काव्यत्व की दृष्टि से पूर्ण सफल हैं।

पुरानी हिन्दी की साहित्य में प्रधान रूप से रासा ग्रन्थों का समावेश होता है। रासा शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ का अभिमत है कि यह शब्द रसायन या रहस्य से निकला है। पर इस शब्द का वास्तविक रहस्य प्रबन्धात्मक कथा है। जैन परम्परा में १३वीं शती से १६वीं शती तक अनेक रासा ग्रन्थ रचे गए हैं। यों तो रासा साहित्य की परम्परा १८वीं शती तक पायी जाती है। व्रतों के फलों का निरूपण, यात्रा के फलों का कथन, जीवन की किसी भी महत्वपूर्ण घटना का काव्यात्मक प्रतिपादन रासा ग्रन्थों के वर्ण्य विषय हैं। इन रचनाओं में धर्म और आचार के बीज तो वर्तमान हैं ही, पर काव्यत्व की भी न्यूनता नहीं है।

'जम्बू स्वामी रासा' की रचना धर्मसूरि ने संवत् १२६६ में की है। इनके गुरु का नाम महेन्द्रसूरि था। इस ग्रन्थ की भाषा अपभ्रंश और गुजराती से प्रभावित हिन्दी है। प्रबन्ध कल्पना कवि में पूर्णतया वर्तमान है। जीवन के उपयोगी अंशों के उद्घाटन की क्षमता कवि में है। भाषा का नमूना निम्न प्रकार है :

जिण चउविस पय नमेवि गुरुचरण नमेवि।
जम्बूस्वामिहिं तणू चरिय भविउ निसुणेवि॥
करि सानिध सरसत्ति देवि जीयरयं कहाणउ।
जम्बूस्वामिहिं (सु) गुणगहण संखेवि बखाणउ॥

'रेवन्तगिरि रासा' की रचना विजयसेन सूरि ने की है। इनका शिष्य वसुपाल मन्त्री था, इसने सम्वत् १२८८ के लगभग गिरनार संघ निकाला था। इस काव्य में गिरनार यात्रा तथा गिरनार क्षेत्र पर किये गये जिर्णोद्धार का लेखा-जोखा उपस्थित किया गया है। इस ग्रन्थ की भाषा पुरानी हिन्दी है, पर गुजराती का प्रभाव स्पष्ट है। इस रचना में काव्यतत्व की अपेक्षा धर्मतत्व की मुख्यता है। नमूना निम्न प्रकार है :

परमेसर तित्थेसरह पयपंकज पणमेवि।
भणिसु रास रेवन्तगिरि-अंबिकदिवि सुमरेवि॥
गामागर-पुर-वय गहण सरि - सखरि - सुपएसु।
देवभूमि दिसि पच्छिमह मणहरु सोरठ देसु॥

'नेमिनाथ चउपई' के रचयिता विनयचन्द्र सूरि हैं। ये संस्कृत तथा प्राकृत भाषा के मर्मज्ञ विद्वान थे तथा संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी इन तीनों ही भाषाओं में कविता भी करते थे। इनके गुरु का नाम रत्नसिंह है। इनका समय १३वीं शती माना गया है। इन्होंने ४० पद्यों में इस काव्य को पूरा किया है। इनका उपदेश माला 'कथानक छप्पय' नाम का ८१ पद्यों का एक अन्य काव्य भी उपलब्ध है। 'नेमिनाथ चउपइ' की प्रारम्भिक पंक्तियाँ निम्न प्रकार है :

सोहग सुन्दर घण लावन्नु, सुमरवि सामिउ सामलवन्नु।
सखिपति राजल चढि उत्तरीय, बार मास सुणि जिम वज्जरिय ।।
नेमिकुमर सुमरवि गिरनार, सिद्धि राजल कन्न कुमारि।
श्रावणि सरवणि कडुए मेहु, गज्जइ विरहि रि झिज्जहु देहु ।।
विज्जु झवक्कइ रक्खसि जेव, नेमिहि विणुसहि सहियइ केव।
सखी भणइ सामिणी मत झूरि, दुज्जण तण मनवांछित पूरि ।।

'संघपतिसमरा रास' भी इस काल की सुन्दर रचना है। इसके रचयिता नगेन्द्र गच्छ के आचार्य पासड सूरि के शिष्य अम्बदेव थे। अणहिल्लपुर पट्टन के ओसवाल शाह समरासंघपति ने संवत् १३७१ में शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार अपार धन व्यय करके कराया था। कवि ने इसी इतिवृत्ति को लेकर इस काव्य की रचना की है। भाषा राजस्थानी का परिष्कृत रूप है। अपभ्रंश का प्रभाव भी विद्यमान है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :

वाजिय संख असंख नादिकाहल दुडुदुडिया।
घोड़े चड़इ सल्लारसार राउत सींगडिया ।।
तउ देवालउ जोत्रिवेगि घाघरि खु झमक्कई।
सम विसम नवि गणइ कोई नवि वारिउ शक्कइ ।।

'थूलभद्र फागु' की रचना चैत्र महीने में फाग खेलने के लिए जिनपद्म सूरि ने की है। इनके पिता का नाम अम्बाशाह और पितामह का नाम लक्ष्मीधर था। ये खीमड कुल में उत्पन्न हुए थे। संवत् १३८६ में ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी सोमवार को इन्हें खरतरगच्छीय जिनकुशल सूरि के पद पर प्रतिष्ठित किया गया था। शाह हरिपाल ने संघभक्ति और गुरु भक्ति के साथ इन्हें युगप्रधान पद बड़े उत्साह के साथ प्रदान किया था। इनकी कविता परिष्कृत और सरस है। अलंकारों का भी यथा स्थान समावेश हुआ है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :

ऊह सोहग सुन्दर रूपवंतु गुणमणि भंडारो।
कंचण जिम झलकंत कंति संजम सिरिहारो॥
थूलिभद्र मुणिराउ जाम महियली बोहंतउ।
नयरराय पाडलिय माँहि पहूतउ विहरंतउ॥

'गौतम रासा' वि० संवत् १४१२ में विजयभद्र ने लिखा है। इस काव्य में कल्पना के सहारे सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किए गए हैं। गौतम स्वामी के रूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है :

सात हाथ सुप्रमाण देह रूपिहिं रंभावरु॥
नयणवयण कर चरणि जिण वि पंकज जलिपाडिय।
तेजहिं तारा चंद सूर आकासि भयाडिय॥
रूविहि मयणु अनंग करवि मेल्हिउ निद्धाडिय।
धीरिम मेरु गंभीरि सिंधु चंगमि चय चाडिय॥

'ज्ञान पंचमी' की रचना मगध देश में विहार करते हुए जिनउदय गुरु के शिष्य ठक्कर माल्हे के पुत्र विद्धणू ने संवत् १४२३ में की थी। इसमें श्रुतपंचमी व्रत का महात्म्य बतलाया गया है। 'ललितांग चरित'[४], 'बारसिखावनरास'[५], 'यशोधर चरित'[६], 'कृपण चरित' और 'राम सीता चरित' १६ वीं शती की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

कवि ठकरसी द्वारा संवत् १५८० में रचित 'कृपण चरित' एक सुन्दर काव्य है। इस काव्य का कथानक बड़ा रोचक एवं शिक्षाप्रद है। बताया गया है कि एक दिन कृपण की पत्नी ने अपने पति से गिरनार की यात्रा को चलने का अनुरोध किया। कृपण महानुभाव ने पत्नी के प्रस्ताव का विरोध किया। पति-पत्नी में इस विषय को लेकर बहुत वाद-विवाद हुआ। पत्नी ने अनेक युक्तियों से तीर्थाटन, दान एवं पुण्य कार्यों के सम्पादन में ही धन की सार्थकता बतलाई, किन्तु कृपण महोदय को उक्त बातें रुचिकर प्रतीत नहीं हुई। उसने किसी युक्ति से पत्नी को उसके पीहर भेज दिया। इधर यात्रियों का एक संघ गिरनार से वापस आया। इस संघ के कुछ लोग मार्ग में व्यापार करते हुए अपने छकड़ों को ले गए थे। अतः वे यात्रा के साथ-साथ बहुत-सा धनार्जन भी कर लाए थे। कृपण के लिए वे व्यापारी यात्री ईर्ष्या का विषय बने।

४ देखें 'हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन' भाग-२, परिशिष्ट, पृ० २१८।
५ वही, पृ० २१६।
६ 'हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास', पृ० ६७।

फलतः दिन रात चिन्ता करने के कारण वह कृपण रोगी हो गया। कृपणता के कारण औषधि कर नहीं सका और उसकी मृत्यु हो गयी। वह मरकर नरक गया।

इस काव्य में रोचकता इतनी अधिक है कि आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना नहीं रहा जाएगा। स्व० श्री पं० नाथूराम प्रेमी ने इसके सम्बन्ध में लिखा है—"यह छोटा-सा पर बहुत ही सुन्दर और प्रसादगुण सम्पन्न काव्य बम्बई दि० जैन मन्दिर के सरस्वती भण्डार में एक गुटके में लिखा हुआ मौजूद है। इसमें कवि ने एक कंजूस धनी का अपनी आँखों देखा चरित्र ३५ छप्पय छन्दों में लिखा है।"[७] उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :

कृपणु एकु परसिद्धु नयरि निवसंतु निलक्खणु।
रही करम संजोग तासु घरि, नारि विचक्खणु॥
देखि दुहू की जोड़; सयलु जगि रहिउ तमासे।
याहि पुरिषकै याहि, दई किम दे इम भासे॥
वह रह्यो रीति चाहै भली, दाण पुंज गुण सील सति।
यह देन खाण खरच्चण किवै, दुवै करहि दिणि कलह अति॥

ये सभी रासा ग्रन्थ प्रायः एक ही शैली पर लिखे गए हैं। इनमें काव्यत्व अल्प और पौराणिकता अधिक है। धर्मवार्ता होने के कारण सुन्दर नीति और विश्वोपकार की भावना अन्तर्निहित है। इस रासा साहित्य में प्रेम और विरह के चित्रों की भी कमी नहीं है। वीररस का चित्रण तो अनेक स्थलों पर बड़े सुन्दर रूप से हुआ है।

'अंजना सुन्दरी रास'[८] में अंजना के विरह का सजीव और उदात्त वर्णन किया गया है। विरहिणी के जीवन की समस्त परिस्थितियों का चित्र सामने उपस्थित हो जाता है। संस्कृत साहित्य में विरह की जिन दस दशाओं का निरूपण किया गया है, वे सभी अंजना के जीवन में विद्यमान हैं। विरहिणी अंजना के जीवन में कवि ने निष्ठा और सहानुभूति की भी कमी नहीं दिखलाई है। पति द्वारा अकारण तिरस्कृत होने से अंजना के मन में अत्यन्त ग्लानि है, वह अपनी संकट की घड़ियों को पति के प्रथम साक्षात्कार की मधुर स्मृति के अनुभव द्वारा प्रसन्नतापूर्वक बिता देती है। भगवद् भक्ति और

---

७ 'हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास', पं० नाथूराम प्रेमी, पृ० १५।
८ 'अंजना सुन्दरी रास' की प्रति जैन सिद्धांत भवन, आरा में सुरक्षित है।

सदाचार ही उसके जीवन के आधार हैं। इस काव्य की कथावस्तु विरहिणी के आँसुओं से ही ग्रथित की गयी है। इस काव्य के रचयिता कवि महानन्द हैं।

मध्यकालीन हिन्दी जैन साहित्य बहुत विशाल है। इस काल में महाकाव्य, खण्डकाव्य, चरित और कथाकाव्य, आध्यात्मिक रूपक काव्य, गीति काव्य, प्रकीर्णक काव्य, आत्मकथा काव्य, रीति साहित्य एवं गद्य साहित्य का सृजन हुआ। हम सुविधा के लिए इस कालखण्ड का काव्य प्रवृत्तियों के आधार पर विवेचन तथा समय क्रमानुसार कवियों के आधार पर ही निरूपण करेंगे।

हमारे अभीष्ट कालखण्ड में श्रेष्ठतम कवि बनारसी दास हैं। ये महाकवि की उपाधि से विभूषित हैं। इनका जन्म धनीमानी परिवार में हुआ था। इनके प्रपितामह जिनदास का साका चलता था, पितामह मूलदास हिन्दी और फारसी के पंडित थे और ये नरवर (मालवा) में वहाँ के मुसलमान नवाब के मोदी होकर गए थे। इनके मातामह मदनसिंह चिनालिया जौनपुर के प्रसिद्ध जौहरी थे और पिता खड्गसिंह कुछ दिनों तक बंगाल के सुल्तान मोदी खाँ के पोतदार रहे थे। इनका जन्म जौनपुर में माघ सुदी ११, संवत् १६४३ में हुआ था। ये श्रीमाली वैश्य थे। ये बड़े ही प्रतिभाशाली और सुधारक कवि थे। शिक्षा सामान्य प्राप्त हुई थी, पर अद्भुत प्रतिभा के कारण ये अच्छे कवि थे। चौदह वर्ष की अवस्था में इन्होंने एक हजार दोहा चौपाइयों का 'नवरस' नामक ग्रन्थ बनाया था, जिसे आगे चलकर इस भय से कि इस ग्रन्थ के अध्ययन से समाज पथ-भ्रष्ट न हो जाए, गोमती में प्रवाहित कर दिया था।

महाकवि बनारसी दास के पिता मूलतः आगरा निवासी ही थे, तथा इन्हें भी बहुत दिनों तक आगरा में रहने का अवसर मिला था। उस समय आगरा जैन विद्वानों का केन्द्र था। इनके सहयोगियों में पं० रामचन्द्रजी चतुर्भुज वैरागी, भगवती दास, धर्मदास, कुंवरपाल और जगजीवन राम विशेष उल्लेखनीय हैं। महाकवि बनारसी दास का सम्पर्क सन्त कवि सुन्दरदास[६] और तुलसीदास के साथ भी था। तुलसीदास की रामायण पर बनारसीदास ने "बिराजै रामायण घट माहीं। मरमी होय मरम सो जानैं मूरख समझें नाहीं।" इत्यादि पद्य अपनी सम्मति दी थी। रचनाएँ निम्न हैं। 'नाममाला'—एक सौ पचहत्तर दोहों का एक छोटा-सा शब्दकोश है। इसका आधार महाकवि धनंजय की 'संस्कृत नाममाला' है। कवि ने धनंजय के २०० श्लोकों का सार १७५ दोहों में ही रख दिया है। इसकी प्रशस्ति में बताया गया है—

६ 'हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास', पृ० ११७।

सोरह से सत्तरि समै, असू मास सित पक्ष।
विजैदसम ससिवार तह, श्रवण नखत परतक्ष ॥
दिन दिन तेज प्रताप जय, सदा अखण्डित आन।
पातसाह थिर नूरदी, जहाँगीर सुलतान ॥[१०]

अर्थात् इस ग्रन्थ की रचना संवत् १६७० में, बादशाह जहाँगीर के राज्य-काल में आश्विन मास के शुक्लपक्ष में विजयादशमी सोमवार के दिन, भानुगुरु के प्रसाद से पूर्णता को प्राप्त हुई।

'नाटक समय सार'—यह एक उत्कृष्ट आध्यात्मिक रचना है। आत्मान्वेषकों को सरस कविता में आत्मतत्व की उपलब्धि की सुन्दर अभिव्यंजना वर्तमान है। कुशल कलाकार ने चित्रकार के समान काव्यगत आत्मानुभूति में नाना कल्पनाओं का रंग लगाकर अद्‌भुत चित्र खींचने का प्रयास किया है। यद्यपि कवि की इस रचना का आधार आचार्य कुन्दकुन्द का समयसार है, पर कवि ने रागतत्व, बुद्धितत्व और कल्पनातत्व का समावेश कर इस रचना की मौलिकता को अक्षुण्ण बनाये रखा है। प्रत्येक पद्य में प्रवाह और माधुर्य वर्तमान है। सरस और कोमल शब्दों का चयन करने में कवि ने अद्‌भुत सफलता प्राप्त की है। अनूठी उक्तियाँ और नवीन उद्‌भावनाएँ तो पाठक का मन ही बरबस अपनी ओर खींच लेती हैं। जीवन के कोमल पक्ष की अभिव्यंजना होने से कविता हृदय और मस्तिष्क दोनों को समान रूप से छूती है। इसमें जीवन के उन विशेष विचारों और भावनाओं का संकलन किया गया है, जो यथार्थ जीवन को गतिशील बनाते हैं।

इसमें ३१० दोहा-सोरठा, २४३ सवैया-इकतीसा, ८६ चौपाई, ६० सवैया-तेईसा, २० छप्पय, १८ कवित्त, ७ अडिल्ल और ४ कुण्डलियाँ हैं। कुल पद्यों की संख्या ८२६ है। इसमें कवि ने आत्मतत्व का निरूपण नाटक के पात्रों का रूपक देकर किया है। इससे सात तत्व अभिनय करने वाले हैं। यही कारण है कि इसका नाम 'नाटक समयसार' रखा गया है। [क्रमशः

१० 'बनारसी नाममाला', पद्य १७१-१७२, प्रकाशक, वीरसेवा मन्दिर, दिल्ली।

जैन पत्र पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती ॥ जुलाई १९८०

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'पुद्गल का स्वरूप' (श्री विजय मुनि), 'वीरवाल समाज के निर्माता : श्री समीर मुनि जी' (महासती सरस्वती), 'जैन धर्म की प्रासंगिकता' (डा० निजामुद्दीन)।

जैन जगत ॥ जुलाई १९८०

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'सियाणी का प्राचीन जैन तीर्थ' (भूरचन्द जैन), 'The Jaina Point of View' (H. P. Verma)।

जैन जर्नल ॥ जुलाई १९८०

इस अंक में है On Ahimsa, Non-Violence, or the Way of Reverence for Life' (Shree Chitrabhanu), 'Rathanemi' (Ganesh Lalwani), 'Tirthankaras, Pratyeka Buddhas and the Ascent of Man' (P. C. Dasgupta), 'The Jaina Doctrine of Naya : Its Implications and Importance' (S. B. P. Sinha), 'The Jaina Concept of Karma' (J. C. Sikdar).

तीर्थंकर ॥ जून-जुलाई १९८०

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'भेद-विज्ञान : एक अनुचिन्तन' (कन्हैयालाल सरावगी), 'ज्याँ पॉल सार्त्र का अस्तित्ववाद' (डा० दत्तात्रय बन्दिष्टे), बोधकथा 'फैसला : अजीब, अनोखा' (नेमीचन्द पटोरिया), 'भेंट/शब्दों से' (डा० नेमीचन्द जैन), 'देखी/तुम्हारी यात्राएँ' (सुरेश 'सरल'), 'अन्तिम पृष्ठ/खत के रूप में चिन्तन' (गणेश ललवानी)।

श्रमण ॥ जुलाई १९८०

इस अंक में है 'भेद-विज्ञान : मुक्ति का सिंहद्वार' (सागरमल जैन), 'भिक्षुणी संघ की उत्पत्ति एवं विकास' (अरुणप्रताप सिंह)।

Vol. IV No. 4 : Titthayara : August 1980
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001